बालिका शोषण की अनकही कहानी

❑ सुचेता सिंह

❑ धर्मेन्द्र शर्मा

बालिकाओं की शिक्षा को लेकर सारी चिंता और प्रयास घोषणाओं और आंकडों के इर्द-गिर्द सीमित रहे हैं। यद्यपि सैद्धांतिक रूप से हम मानते हैं कि बालिका शिक्षा का समाज में महिलाओं की अवस्थिति से गहरा संबंध है । तब बालिका शिक्षा की चुनौतियों को महिलाओं की अवस्थिति के संदर्भ में खोलना होगा । लेकिन तब क्या किया जाये जबकि महिलाओं के संसार की यातना और शोषण मासूम बालिकाओं की दुनिया में स्थानान्तरण हो जाते हैं । हालात वही, बस सहने और भुगतने वाले पात्रों की उम्र कम हो गई है । 'कम उम्र' एक पदबंध नहीं है, वह एक विकसनशील एनाटोमी और भाव-संवेदन का भी नाम है । वहां शोषण और यातना के मानी कहीं ज्यादा भयानक होते हैं। यह पुस्तक राजस्थान और बिहार के समाज में बालिका शोषण की अवस्थिति का जमीनी चित्रण और विश्लेषण करती है । 'बुक्स फोर चेंज' शृंखला की इस पहली किताब पर यहां क्रमश: सुचेता सिंह और धर्मेन्द्र शर्मा की समीक्षायें दी जा रही हैं ।

नेशनल फाउंडेशन द्वारा प्रारंभ किया मीडिया फैलोशिप कार्यक्रम विकास वाले विषयों को सार्वजनिक जीवन में और सामाजिक चेतना के क्षेत्र में मुखरित करता है। वर्ष 1996-97 की फैलो लेखिकायें सुश्री निवेदिता झा व ममता जैतली ने असंख्य बेबस कन्याओं के शोषण पर पैनी दृष्टि डाली है । ये फैलोशिप राष्ट्रीय स्तर पर मीडिया द्वारा सामाजिक व विकासात्मक प्राथमिकताओं के बारे में लोक विचारधारा बनाने इन मुद्दों को समर्थन देने तथा संवेदनशील पत्रकारों व अन्य मीडिया व्यावसायियों में जागृति पैदा करने के लिए दी जाती हैं ।

बुक्स फार चैंज का हिन्दी में यह पहला प्रकाशन है । एन एफ आई चाहता है कि हिन्दी के मूल लेखों को हिन्दी में ही प्रकाशित किया जाए क्योंकि अनुवाद से उसका असर काफी कम हो जाता है। इसके अतिरिक्त सामाजिक और विकासात्मक मुद्दों पर छपे हिन्दी के लेखों के पाठकों की संख्या भी काफी है । विशेषकर के उत्तरी राज्यों में जहां कि एन एफ आई द्वारा वित्तीय अनुदान की मदद से कई परियोजनाएं चल रही हैं।

'आज' की उप संपादिका, 'नवभारत टाइम्स' की स्वतंत्र पत्रकार और पिछले चार वर्षों से राष्ट्रीय सहारा पटना की रिर्पोटर सुश्री झा ने बालिका स्वास्थ्य, बाल मजदूर ओर देह कर्म मुद्दों को हिन्दी के माध्यम से अपना मुद्दा बनाया है । इन्होंने वेश्वावृत्ति, यौन शोषण, बालिका मजदूर और उनके शोषण के ढंगों में आने वाले परिवर्तनों को अति निकट से देख कर लोक उजागर किया है। वहीं हिन्दी के समाचार पत्र 'उजाला छडी' की संपादक और प्रकाशक सुश्री ममता जैतली ने महिलाओं पर हिंसा के मुद्दों को उठाया है। खासकर भंवरी देवी प्रकरण, जयपुर की मुस्लिम बालिकाएं : भावी नागरिक, माता, शिक्षिका, पुत्री और शिक्षार्थी आदि के रूप में बालिका की क्या नियति है, उसको पकड़ने की कोशिश की है ।

सुश्री झा ने अपनी शोध में बिहार के गया, पटना, भागलपुर व मुजफ्फरपुर क्षेत्र को लिया है व सुश्री ममता जैतली ने राजस्थान के जयपुर जिले के ग्रामीण व शहरी क्षेत्र में अपना शोध किया है।

देह व्यापार में झोंकी जा रही नाबालिग लड़कियों की जिस बुरी स्थिति को सुश्री झा ने अपनी शोध में उजागर किया है वह झकझोरने वाली है । एन एफ आई के सर्वेक्षण के अनुसार ऐसी बच्चियों की तादाद हजारों में है । आज दुनिया भर में देह व्यापार को एक व्यवसाय के रूप में स्थापित करने की कोशिश की जा रही है । ''सेक्स वर्कर' का नाम देकर इसे महिमामंडित किया जा रहा है । और यह धारणा बनायी जा रही है कि जब तक सभ्यता है तब तक इस पर अंकुश नहीं लगाया जा सकता। दूसरी तरफ नन्हीं मासूम लडकियां इस व्यवसाय से निकलने के लिए छटपटा रही हैं। सर्वेक्षण के दौरान जब 10 वर्षीय सलमा ने आप बीती लिख कर दी : ''मैं यहां से निकलना चाहती हूं, पढ़ लिख कर बड़ा आदमी बनना चाहती हूं । मेरे घर जब कोई आदमी आता है तो मुझे गुस्सा आता है । मां कहती है धंधा नहीं करूंगीं तो खिलाऊंगी कहां से? मैं भी दूसरे बच्चों की तरह जीना चाहती हूं, मुझे निकालिये यहां से ।'' सलमा जैसी अनगिनत बच्चियों की आपबीती एक जैसी है, जो घुटन और अंधेरी दुनिया में जी रही है । सलमा, मुजफ्फरपुर

शहर के एक अभिशप्त व बदनाम मौहल्ले में रहती है ।

जहां ये बच्चियां एक ऐसी बदतर स्थिति से गुजर रही हैं, वहीं यूनिसेफ की ताजा रिर्पोट में भी राज्य में बढ़ रहे देह व्यापार पर चिंता व्यक्त की गई है । यह देखा जा रहा है कि इसमें लगातार कम उम्र की लड़कियों को शामिल किया जाता है । जबकि संयुक्त राष्ट्र के घोषणा पत्र के अनुसार इस धंधे में खरबों रुपये का मुनाफा हो रहा है । दुनिया भर में लगभग दस लाख बच्चियों को जबरन इस पेशे में डाला जा रहा है । उधर प्रशासन व स्वयंसेवी संगठन की इस नरक से मासूमों को निकालने में कोई दिलचस्पी नहीं है ।

समाज कल्याण के नाम पर करोड़ों रुपये खर्च करने वाली सरकार इन अभिशप्त लड़कियों के बेहतर जीवन स्तर के लिए कभी कोई प्रयास नहीं करती।

भूख, गरीबी और सामाजिक परिस्थितियों के कारण धंधे में लगी हजारों मासूम लड़कियों के लिये बाहर निकलने के सारे रास्ते बंद हैं, जो यहां से निकलने की कोशिश करती हैं, उन्हें भारी कीमत चुकानी पड़ती है । 13 वर्षीय मंजुल जिसे बंग्लादेश से खरीद कर लाया गया, उसकी देह पर सिगरेट से जलाने के असंख्य निशान हैं। इस धंधे में रहते उन्हें ग्राहकों की नाजायज बातों को भी मानना पड़ता है । इसके लिए इन्हे अधिक पैसा दिया जाता है । इस पूरी स्थिति का आंकलन करते हुए यह कहा जा सकता है कि समय के साथ-साथ ग्राहकों का तवायफों से रिश्ता बदलने लगा है। कोठों का जो स्वरूप पहले था, जहां लोग शास्त्रीय संगीत दादरा व ठुमरी सुनने आते थे, वहां आज ठर्रा पीते हैं और भौंडें कामोत्तेजक गाने सुनते हैं । यह सब देख कर लगता है कि एक व्यवसायिक व भावनाशून्य माहौल पनप रहा है व कोठों पर बैठी मासूम लड़कियों को भयानक मानसिक व शारीरिक पीड़ा से गुजरना पड़ रहा है ।

किताब में लड़कियों के प्रति उत्पन्न हो रही सामाजिक उदासीनता का भी जिक्र किया है । अध्ययन में बच्चियों की कम होती संख्या पर खासी चिंता व्यक्त की गई है । यहां बताया गया है कि इस सामाजिक व्यवस्था में बच्चियां अपने जन्म से ही लिंग विभेद की शिकार होती है वह चाहे शैक्षणिक स्थिति हो या सामाजिक या पारिवारिक । शिक्षा भी लडकियों के लिए गैर जरूरी समझी जाती है । बिहार एजूकेशन प्रोजेक्ट के तहत हुए शोध में यह तथ्य सामने आया है कि स्कूल में लड़कों की अपेक्षाकृत लड़कियों का प्रतिशत एक तिहाई है । इसकी प्रमुख वजह परिवार में लड़कियों की शिक्षा को लेकर उदासीनता है ।

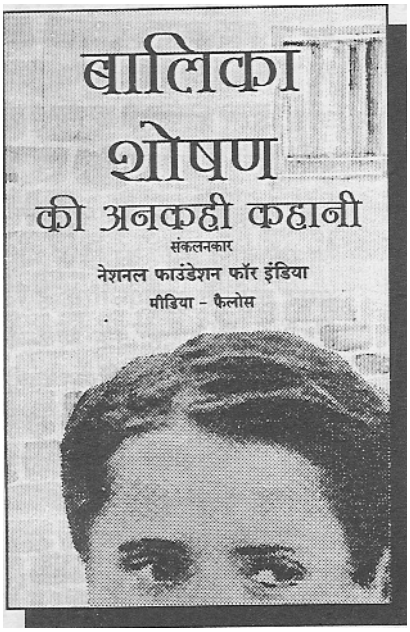

बालिका शोषण की अनकही कहानी

संकलनकार : निवेदिता झा
ममता जैतली

मूल्य - 125/- भारत में ।

बुक्स फोर चेंज, 8, वुड स्ट्रीट,

नेशनल फाउंडेशन फॉर इंडिया द्वारा कराये गये शोध में विशेष रूप से बालिका श्रमिकों की स्थितियों पर भी छानबीन की गई है ।

अधिकांश लघु व कुटीर उद्योग बच्चों के सहारे चलते हैं जिसमें लड़कियां भी दिन में 14 से साढ़े 14 घंटे मेहनत करती हैं व उसके साथ-साथ घर में कामों में भी हाथ बटाती हैं । इस सर्वेक्षण में पाया गया कि काम में रहते इनमें से अधिकतर लडकियां कभी खेल नहीं पाती, छोटे छोटे तंग कमरे व लगातार तंबाकू की महक से कई बार इनका सिर भारी हो जाता है । बीड़ी कारखानों में काम करने वाली बालिकाओं के फेफड़ों की बीमारी व दमा होना आम सी बात हो गई है ।

हालांकि देश में बाल मजदूरी की समस्या से निपटने के लिए एक दर्जन से भी ज्यादा कानून मौजूद हैं जिसमें 15 वर्ष से कम आयु के किसी भी बच्चे को कारखाने व अन्य खतरनाक रोजगार में नहीं लगाया जा सकता। लेकिन वर्ष 1981 की जनसंख्या के अनुसार 14 वर्ष से कम उम्र वाली 8.33 प्रतिशत लड़कियां पूरी तरह से व 9.35 प्रतिशत लड़की आंशिक रूप से कामकाजी हैं। सर्वेक्षण से पता चलता है कि बालिका शोषण औरतों के शोषण का सीधा परिणाम है जिसका विस्तृत विवरण इस पुस्तक में दिया गया है ।

आदिवासी समाज की महिलाओं की स्थिति पर भी इस किताब में प्रकाश डाला है, जो कि गरीबी, भुखमरी व लिंग भेद की

शिकार हैं । गैर आदिवासी समाज की तरह ही अब इसमें भी नवजात शिशुओं की हत्या का सिलसिला शुरू हुआ है । शोध के दौरान दो चीजें जो मोटे तौर पर निकल कर आई, आदिवासी समाज के विघटन की मुख्य वजह है वहां की भूमि व्यवस्था और विस्थापन। भूमि व्यवस्था में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रहने के बावजूद उस पर इनका अधिकार नहीं है, जबकि एक आदिवासी लडकी खेत में 10 से 11 घंटे तक काम करती है ।

आदिवासी लड़कियों के यौन शोषण के कई मामले इस शोध में सामने आये । कुछ लड़कियों ने स्वीकार किया कि यौन शोषण के कारण उन्होंने काम छोड़ दिया । एक शोध के अनुसार बिहार की दस हजार आदिवासी लड़कियां दिल्ली में घरेलू नौकरानी का काम करती है जिनमें से आधी लड़कियां अपनी पहचान, संस्कृति व सभ्यता भूला चुकी है । आदिवासी मर्दों में शराब के शौक के चलते औरतों को नर्क की जिन्दगी गुजारनी पड़ रही है। शराब पीकर मर्द औरतों को मारते पीटते हैं । ऐसी यंत्रणाओं से गुजरने वाली ज्यादातर महिलायें खेतिहर मजदूर हैं ।

शिक्षा स्वास्थ्य जैसे मामलों में भी ये महिलाये काफी उपेक्षित है । अंधविश्वास व ओझा गुनी के चक्कर में इस समाज ने काफी नुकसान उठाया है । इनका अधिकांश शिकार महिलायें ही होती हैं।

दहेज के कारण हो रही हत्याओं को भी शोध में शामिल किया गया है । इसमें यह निकल कर आया है कि हत्या के अधिकांश मामले जहां दहेज के हैं, वही बेटी जनने के कारण बांझ रहने के कारण और अपने अधिकार मांगने के कारण औरतों की हत्या कर दी गयी है । ये हत्याऐं घरों में की गयी, सड़क पर भरे चौराहें पर की गई, लेकिन किसी ने प्रतिकार नहीं किया । पुलिस की निष्क्रियता पर भी यहां सवाल उठाये गये हैं जहां पुलिस ने प्राथमिकी दर्ज करने से ही इंकार कर दिया है । दहेज के लिए दी गई यातनाओं में लाठी से पीटना, बच्चों के सामने मारना, गुप्तांगों में जलती सलाखें डालना, कई ऐसे अमानुषिक तरीकों का इस्तेमाल औरतों के विरुद्ध किया जाता है । कई बार पिटाई से गर्भपात हो जाता है अथवा भ्रूण पर इसका बुरा असर पड़ता है ।

बालिकाओं से जुड़े एक और पहलू को यहां उजागर किया गया है कि बाल विवाह होने के कारण कम उम्र में मां बनना बालिका वधुओं की नियति हो गयी है । हजारीबाग में हुए सर्वेक्षण से स्पष्ट हुआ है कि कम उम्र में मां बनने वाली अधिकतर बालिकाएं पिछड़ी जाति की हैं । वही जयपुर में जन प्रतिनिधियों का कहना है कि बाल विवाह रोकेंगे तो वोट कौन देगा, वहीं अधिकारी भी ढीले पड़ जाते हैं । ले देकर बाल विवाह रोकने में जो जिम्मेदारी निभा रही हैं वे साथिन ही हैं, जिन्हे प्रतिरोध के कारण भारी कीमत चुकानी पड़ रही है जैसा कि भंवरी के साथ हुआ । आज का माहौल यह बना हुआ है कि सरकार और नेता सस्ती लोकप्रियता के लिए बाल विवाह की समस्या को बढ़ा चढ़ा कर पेश तो कर रहे हैं लेकिन स्थाई समाधान की इच्छा शक्ति का उनमें अभाव है।

लड़कियों की शैक्षिक स्थिति के मुद्दों को भी इस किताब में उठाया गया है । सर्वेक्षण के दौरान पाया गया है कि लड़कियां स्कूल नहीं जा पाती, वहां भी लिंग भेद मौजूद है । अगर मां-बाप बच्चों को स्कूल भेजने में सक्षम हैं तो वे लड़के को ही स्कूली शिक्षा देते हैं । बिहार में लड़कियों की शैक्षणिक स्थिति इतनी खराब है कि इसने पारिवारिक ढांचे पर भी असर करना शुरू कर दिया है । अगर शिक्षा को लड़कियों के साथ जोड़कर नहीं देखा गया तो आने वाले दिनों में पारिवारिक ढांचे पर भी इसका असर पड़ेगा ।

राजस्थान के अजमेर जिले के छोटा नारायणा गांव में चलायी जा रही बाल संसद का जिक्र भी इस किताब में किया गयाहै । यह संसद बड़ी ही अनौपचारिक है जिसका उद्देश्य रात्रिशाला के बच्चों को देश की प्रजातांत्रिक व्यवस्था और राजनीति का व्यावहारिक ज्ञान देना है । इसमें बालिका भागीदारी को बढ़ाने पर जोर दिया गया है । यह प्रोत्साहन की बहुत ही सराहनीय प्रक्रिया है । इस क्षेत्र में हो रहे निरंतर महिला संवाद का असर बालिकाओं के व्यक्तित्व में देखने को मिलता है ।

अन्य इसी तरह के मुद्दे जो शोध के दौरान इस किताब में उठाये गये हैं वह अपने आप में बहुत ही अहम मुद्दे है । राजस्थान के जयपुर जिले में सन् 1989 से 1992 में हुए साम्प्रदायिक दंगों का नतीजा हिन्दू मुस्लिम समाज की लड़कियों को भुगतना पड़ रहा है, जिसके रहते उनमें अपनी सुरक्षा के प्रति भय उत्पन्न हुआ है । इससे पूरा सामाजिक माहौल एक भय व अविश्वास में डूब गया है। इसने आपसी मेलजोल व एक दूसरे को समझने के अवसर छीने हैं।

निष्कर्षत : दोनों लेखिकाओं ने बाल मजदूर के रूप में कार्यरत असंख्य बेबस कन्याओं-कूडा-कचरा उठाने वाली, गन्ने के खेतों में काम करने वाली, अगरबत्ती व बीडी बनाने वाली, मनके और कार्पेट बनाने वाली असंगठित क्षेत्र की कार्यकर्ताओं तथा घरेलू कामों वाली और अन्य कामों में लगी असंख्य बेबस कन्याओं के शोषण पर पैनी दृष्टि डाली है । वैसे तो कार्यकर्ताओं के अनुमान के अनुसार हजारों-लाखों बालिका मजूदर ऐसे धंधों में काम कर रही हैं पर इसमें भी पानी भरने वाली, कपड़े धोने वाली, खाना बनाने वाली और बच्चों को देखने वाली अनेक वालियों की संख्या शामिल नहीं है । सारे सरकारी आंकड़े और कार्यक्रम इनकी आज अनदेखी कर रहे हैं ।

• • •

नेशनल फाउंडेशन फॉर इंडिया के दो मीडिया फैलोस निवेदिता झा और ममता जैतली द्वारा लिखे गये लेखों का संकलन हाल ही में बुक्स फॉर चेंज द्वारा 'बालिका शोषण की अनकही कहानी' शीर्षक से प्रकाशित किया गया है । बुक्स फॉर चेन्ज का यह पहला हिन्दी प्रकाशन है । दोनों ही लेखिकाओं ने अपने लेखों में मूलत: बिहार और राजस्थान में बालिकाओं की स्थिति को आधार बनाया है । इसमें न केवल आंकडों को विश्लेषण की दृष्टि से लिया गया है अपितु जमीनी सच्चाई को भी हूबहू लिखने की कोशिश की गई है। ये कोशिश फिर चाहे बच्चियों की आश्चर्यजनक रूप से कम होती जा रही संख्या की समस्या पर हो या फिर बाल विवाह के दुष्चक्र की चर्चा हो। ऐसा नहीं है कि तस्वीर के केवल धूमिल पहलू को ही उजागर किया है, पुस्तक के अन्त में कुछ आशा की किरण भी नजर आती है । निवेदिता झा ने अपने कार्यक्षेत्र में रहते हुए बालिका स्वास्थ्य, बाल मजदूरी और देह व्यापार जैसे मुद्दों पर गहराई से अध्ययन किया है, वहीं ममता जैतली ने महिलाओं पर हो रही शारीरिक और मानसिक हिंसा को गहराई से अपने लेखों में चित्रित किया है ।

बच्चियों की कम होती संख्या और सामाजिक उदासीनता का खाका पहले ही लेख में देखने को मिलता है । लेखिका इस और इशारा करती दिखाई देती है कि बालिका शिशु का भविष्य खतरे में है । बालिकाओं की बढ़ती मृत्यु-दर ही उनकी संख्या में कमी का बाइस है जिसके पीछे समाज में व्याप्त लिंग-भेद की सोच काम करती है । बिहार का जिक्र करते हुए लेखिका कहती है कि 1991 में राज्य में गुमशुदा महिलाओं की संख्या 40 लाख तक पहुंच गई थी । शिक्षा तक सभी बच्चों की पहुंच तो जैसे एक ख्वाब भर बनकर रह गयी है इस क्षेत्र में । लेखिका सर्वेक्षण का संदर्भ देकर बताती है कि शिक्षा प्राप्त करने के अवसर अगर उपलब्ध भी हैं तो वे लड़की की अपेक्षा लड़के के लिए पहले खुलते हैं ।

बिहार राज्य में बालिका शोषण के एक और पहलू को निवेदिता ने अपने एक लेख में पोषण और शोषण की तराजू पर रख कर तौलने की कोशिश की है । जहां नन्हीं बच्चियों से एक तरफ ऐसे श्रम साध्य कार्य करवाये जाते हैं कि देखने वाले को पत्थर का कलेजा चाहिये, वहीं लेखिका इस ओर भी इशारा करती है कि ऐसे श्रम को बालश्रम की श्रेणी तक में नहीं रखा जाता । प्रशासन की ढीली पकड़ आग में घी का काम करती है। एक तो वैसे ही बाल मजदूरी ने शोषण को बढ़ावा दिया है, वहीं पहले से जारी सामंती व्यवस्था को मजबूती भी प्रदान की है और मजदूर यूनियन के सशक्तिकरण में अनेकों अडचनें भी पैदा की हैं । नरक-का-सा जीवन बसर कर रही बिहार की बालिकाओं के दयनीय जीवन पर लेखिका ने काफी संजीदगी से लिखा है ।

देह व्यापार में जबरदस्ती घसीटी जा रही नाबालिग लडकियों के जीवन की एक झलक भी इस पुस्तक में दिखाई देती है । लेख में सेक्स वर्कर्स का नाम देकर देह व्यापार को महिमा मंडित करने की भर्त्सना की गई है और वहीं कुछ बच्चियों द्वारा इस चंगुल से बचने के लिये जारी कोशिश और वातावरण की घुटन का सजीव वर्णन किया है । यौन शोषण के दौरान दी जाने वाली शारीरिक यातनाओं की आपबीती का जिक्र दिल को दहला देने वाला चित्र पेश करता है। ऐसा वर्णन पाठक के समक्ष एक वीभत्स दृश्य प्रस्तुत करता है जिसमें मानो समाज का एक वर्ग विशेष दैत्य और प्रशासन नपुंसक नजर आता है। जमीन से बेदखल हो रही आदिवासी परिवारों की लडकियों का बडी तादाद में शहरों में पलायन और वहां पर नौकरी दिलाने की आड में खुलेआम उनके साथ किये जाने वाले यौन और आर्थिक शोषण का भी जिक्र पुस्तक में किया गया है ।

राजस्थान में प्रचलित बाल-विवाह जैसे अभिशाप लेख में एक ओर जहां कोरी आंकडेबाजी और प्रशासन के छद्म प्रयासों को लम्बे हाथों लिया है, वहीं दूसरी ओर बाल विवाह को जैसे तैसे संपन्न करवाने या रोकने के हथकंडों का भी खुलासा किया गया है। पर असली चिंता इस बात पर जताई है कि समाज में इस विषय को लेकर अभी तक कोई सार्थक संवाद स्थापित नहीं हो पाया है। बाल-विवाह के अंतर्निहित दुष्परिणामों यानि कम उम्र में मां बनने, शिक्षा जारी न रख पाने और स्वास्थ्य की हानि जैसे पहलुओं पर भी महिलाओं से हुई विस्तृत बातचीत को आधार बनाकर मुद्दे को प्रस्तुत किया गया है ।

एक आंकडा निश्चित तौर पर पाठक को चौंकाने वाला होगा यदि बालिका शिक्षा के आइने को सामने रख लें तो। बिहार में प्राथमिक विद्यालयों में करीब 30 लाख छात्राएं हैं । लेकिन कक्षा 5 तक आते आते उनकी संख्या मात्र 6 लाख रह जाती है। लेखिका राष्ट्रीय शिक्षा नीति के ''सभी के लिए शिक्षा'' के नारे को खोखला करार देती है और इसे बिहार के संदर्भ में तो नक्कारखाने में तूती की संज्ञा देती है । एक आंकडे का हवाला देते हुए वे कहती हैं कि 55 प्रतिशत बच्चों को प्राथमिक स्तर पर 'मजबूरन' पढ़ाई छोड़नी पड़ती है । इनमें से लड़कों की संख्या कुल का 45 प्रतिशत और लड़कियों का 77 प्रतिशत होता है । बच्चों को स्कूल जाने से रोकने के कारणों जैसे - घर से स्कूल की दूरी, महिला शिक्षिकाओं का अभाव आदि का जिक्र यद्यपि बिहार के संदर्भ में ही किया गया है परन्तु शेष भारत में स्थिति इससे अच्छी होगी, ऐसा सोचना भ्रम पालने जैसे बात ही होगी ।

पुस्तक के अंतिम कुछ लेख एक संवाद के लिए एक जमीन तैयार करते और विकल्प सुझाते प्रतीत होते हैं । तिलोनिया और

लूणकरणसर में चल रहे अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रमों ने जहां लड़कियों के लिए संसार में झांकने के द्वार खोले हैं, वहीं आपसी विमर्श के लिए मंच भी उपलब्ध करवाये है ताकि उनमें जनतांत्रिक सोच का विकास संभव हो सके । यह आशा भी व्यक्त की गई है कि बदलाव आयेगा तो सही, भले उसकी प्रक्रिया धीमी ही क्यों न हो ।

दूरदर्शन का वर्तमान स्वरूप और चरित्र आम चर्चा का विषय होने के बावजूद भी बदलाव नहीं ला पा रहा है, यही चिन्ता है पुस्तक के एक लेख में । अनेक लोगों से किये गये साक्षात्कार को बखूबी रखने की कोशिश के साथ साथ पुस्तक दूरदर्शन पर बढती अश्लीलता पर एक बहस की संभावना भी तलाशती प्रतीत होती है। बढ़ते मूल्यों और दोहरे मापदण्डों से उपजी समस्या पर एक सार्थक़ संवाद का रास्ता इस लेख में खोजा जा सकता है ।

धर्म और सम्प्रदाय भारत में हमेशा से एक संवेदनशील विषय रहा है भारतीय राजनीति और अंतत: आम जीवन का । सांप्रदायिक दंगों और बालिका शिक्षा पर पडने वाले उन प्रभावों का जिक्र भी काफी सफाई से किया गया है । शिक्षा से समाज में धर्म से प्रभावित सोच में आने वाले क्रमिक परिवर्तन की ओर भी इशारा किया है। परन्तु साथ ही यह चिन्ता भी जताई है कि अल्प संख्यक समुदाय को मुख्य धारा को जोडने और उसे उसके पूर्वाग्रहों और संकीर्ण दायरों से बाहर निकालने में शिक्षा सफल नहीं हो पायी है ।अंतिम अध्याय में विश्व प्रसिद्ध कालबेलिया नृत्यांगना गुलाबो की जीवन यात्रा को कडी दर कडी पिरोने और उससे समाज को मिलने वाली नई पहचान को उजागर किया है ।

कुल मिलाकर यह पुस्तक बालिका और उसके शोषण के विविध आयामों को पाठक़ों तक पहुंचाने में सफल रही है । जगह जगह दिये गये चित्र और संविधान में किये गये प्रावधानों का विवरण विषय को और भी संजीदा बना देता है । पुस्तक यह जताने में सफल रही है कि सत्ता और राजनीति के साथ साथ प्रशासन और समाज का बुद्धिजीवी वर्ग बालिका शोषण पर एक पहल करने में नाकाम रहा है और कहीं-कहीं तो इनका राजनीतिक दुरूपयोग तक किया गया है । चाहे वह महिला आरक्षण विधेयक हो या फिर बाल विवाह में स्थानीय नेताओं की चुप्पी ।◆

समाज के निचले पायदान पर खड़े इस विशाल वर्ग के शैक्षिक माहौल का डरावना चेहरा इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि बिहार में प्राथमिक विद्यालयों में करीब 30 लाख छात्राएं हैं । लेकिन पांचवी कक्षा तक आते आते उनकी संख्या मात्र 6 लाख रह जाती है । नए विद्यालयों का आंकडा बताकर प्राय: सभी सरकारों ने दलितोद्धार का सेहरा तो बांध लिया लेकिन किसी की नजर उन 80 प्रतिशत बालिकाओं की मजबूरियों की तरह नहीं गई जिनके पढ़ने के अरमान बचपन में ही खत्म हो गये हैं । जिनकी हूक से पूरा समाज दागदार बन गया है ।

1993 की जनगणना के अनुसार, देश की 48 प्रतिशत आबादी आज भी निरक्षर है जिसमें 6 से 14 वर्ष की उम्र में अशिक्षित बच्चों की संख्या 1 करोड 90 लाख से लेकर 2 करोड 40 लाख है । एक अनुमान के अनुसार, इसमें से 60 प्रतिशत बालिकाएं अशिक्षित हैं । 52 प्रतिशत बच्चियां 5 वीं कक्षा तक भी नहीं पहुंच पाती । शहरी लडकियों के मुकाबले ग्रामीण क्षेत्रों में कम लडकियां स्कूल में दाखिला लेती हैं । ताजा आंकडों के अनुसार पहली से पांचवी कक्षा तक कुल भर्ती किये गये छात्रों में से 17.35 प्रतिशत बच्चे अनुसूचित जाति के होते हैं । इनमें लडकियों की संख्या केवल 39 प्रतिशत है । छठी से आठवीं वर्ग तक कुल दाखिल बच्चों में से 14.94 प्रतिशत अनुसूचित जाति के बच्चे हैं, जिसमें लडकियों की संख्या सिर्फ 32 प्रतिशत है ।

वर्ष 1993 में किये गये सर्वेक्षण के अनुसार, प्राथमिक स्तर पर 55 प्रतिशत बच्चों ने 'मजबूरन' पढ़ाई छोड़ दी । जबकि पढ़ाई छोडने वाले लडकों की संख्या 47 प्रतिशत थी और लडकियों की संख्या 77 प्रतिशत । इन आंकडों के जरिये शैक्षणिक स्थिति की भयानकता तो उजागर होती ही है, साथ ही यह भी पता चलता है कि शिक्षा को राष्ट्रीय स्तर पर कितना महत्व दिया गया है। 1980 के दशक में विकासशील देशों में भारी मात्रा में कर्ज लिया जिसे चुकाने के लिए इन्हें अपने सामाजिक खर्चों में कटौती करनी पडती है । कटौती की तलवार हमेशा शिक्षा पर ही लटकती है ।

– 'बालिका शोषण की अनकही कहानी' से